भारत के वकीलों की परीक्षा
Testing India's Lawyers

माधव खोसला
Madhav Khosla
August 16, 2010

इस वर्ष के उत्तरार्ध में भारतीय विधिज्ञ परिषद (बार काउंसिल) भारत में कानून की प्रेक्टिस करने के लिए अपेक्षित योग्यता में सुधार लाने के लिए महत्वाकांक्षी मानदंड निर्धारित करेगी. कानून के स्नातकों को अब बार में अपने नामांकन के लिए स्नातक होने के बाद एक परीक्षा देनी होगी. इस परीक्षा में उनके कानूनी ज्ञान की परीक्षा ली जाएगी. विधिज्ञ परिषद में नामांकन के लिए ऐसी परीक्षा विश्व के अनेक देशों में आवश्यक है. इस मानदंड का उद्देश्य कानून के स्नातक छात्रों में न्यूनतम मानदंड निर्धारित करना होगा. यद्यपि इसका प्राथमिक उद्देश्य तो वकीलों की गुणवत्ता में सुधार लाना ही है, लेकिन परोक्ष रूप में इससे कानूनी शिक्षा में भी सुधार आएगा.

इस समय भारत में विधिज्ञ परिषद के नामांकन के लिए अधिवक्ता अधिनियम 1961 में निर्धारित मानदंडों में कुछ शर्तें रखी गई हैं. प्राथमिक योग्यता तो मान्यताप्राप्त कानूनी विद्यालय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करना ही है और उसके परिणामस्वरूप शिक्षा के स्तर को भी काफ़ी महत्व दिया गया है. प्रस्तावित अखिल भारतीय विधिज्ञ (बार) परीक्षा में इस बात की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है कि कानून की प्रेक्टिस शुरू करने से पहले वकीलों की गुणवत्ता की अधिकाधिक छानबीन करने के लिए सार्वभौमिक रूप में एक ऐसी परीक्षा ली जाए जिससे कानूनी प्रेक्टिस में उनके प्रवेश के लिए उनकी अपेक्षित योग्यता का मूल्यांकन किया जा सके.

चूँकि यह मानदंड कानूनी प्रेक्टिस में प्रवेश के लिए पिछले परिणामों पर आधारित होगा,इसलिए परोक्ष रूप में इसका प्रभाव कानून की शिक्षा पर भी पड़ेगा. राष्ट्रीय विधि विद्यालय की स्थापना से ही भारत की कानूनी शिक्षा में कायाकल्प हो गया था. यह प्रक्रिया बेंगलोर में राष्ट्रीय विधि विद्यालय की स्थापना से ही शुरू हुई थी और उसकी सफलता से इस प्रक्रिया को और भी बल मिला था. इस संस्थाओं की गुणवत्ता एक ऐसे मॉडल के ज़रिए सुनिश्चित की गई जो इनपुट पर नियंत्रण बनाए रखता है. दूसरे शब्दों में एक कड़ी प्रतियोगी परीक्षा द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि बौद्धिक रूप में प्रखर छात्रों के समूह को प्रवेश के लिए आमंत्रित किया जाए और योग्य वकीलों के रूप में कानूनी प्रेक्टिस के लिए उन्हें तैयार किया जाए. भारतीय प्रौद्योगिकी

संस्थान (आईआईटी) का उदाहरण ही लेते हैं. यह इनपुट-आधारित मॉडल संकाय की गुणवत्ता और संस्था के स्वतंत्र अनुसंधान कार्यों को इतना महत्व नहीं देता, जितना कि एक-दूसरे को शिक्षित और प्रेरित करने की छात्रों की योग्यता को महत्व देता है.

राष्ट्रीय विधि विद्यालय जैसी संस्थाओं में इनपुट-आधारित मॉडल की सफलता के बावजूद यह मॉडल उस समय विफल हो जाता है जब यह फ़ूड चेन की तरफ़ बढ़ता है. राष्ट्रीय विधि विद्यालयों की संभावित समस्याओं पर ही ध्यान देने का परिणाम यह हुआ है कि उन तमाम संस्थाओं की दुर्भाग्यपूर्ण उपेक्षा होने लगी जो बड़ी संख्या में भारत में वकीलों को तैयार करती हैं. भारतीय विधिज्ञ परिषद (बार काउंसिल) द्वारा अखिल भारतीय विधिज्ञ (बार) परीक्षा आयोजित करने का प्रयास बहुत सामयिक चेतावनी है कि भारत में कानूनी शिक्षा में सुधार न तो राष्ट्रीय विधि विद्यालय से शुरू होते हैं और न ही वहाँ जाकर समाप्त हो जाते हैं. यह मानदंड संकल्पना को इनपुट-आधारित मॉडल से हटाकर आउटपुट-आधारित मॉडल पर ले आता है. इसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि विधि विद्यालयों से स्नातक होने वाले छात्रों को कुछ हद तक कानूनी ज्ञान भी होना चाहिए. इसके परिणामस्वरूप कम से कम सैद्धांतिक रूप में तो पूरे भारत के विधि विद्यालयों में दीर्घकालीन सुधार आ ही जाएगा. प्रवेश परीक्षा में अपेक्षित कानूनी ज्ञान का स्तर पाने लायक शिक्षा की ओर बढ़ने के लिए यह आवश्यक होगा.

जैसी कि आशा थी कि प्रस्तावित मानदंड से अनेक प्रकार की चिंताएँ भी उभरने लगी हैं. कुछ चिंताओं को तो समझा जा सकता है, लेकिन अंततः उन्हें रद्द करना ही ठीक होगा. उदाहरण के लिए अंतिम वर्ष के अनेक विधि छात्रों ने कहा है कि स्नातक होने के बाद इस परीक्षा से उनकी रोज़गार की योजना पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और इस प्रकार उनका कैरियर ही चौपट हो जाएगा. इस चिंता से तो ऐसा लगता है कि कुछ महीनों के लिए परीक्षा स्थगित करने से परीक्षा आयोजित करने का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा. इस सुझाव को स्वीकार करने का कोई मतलब नहीं है,क्योंकि प्रस्तावित परीक्षा पूरे भारत में आयोजित की जा रही है और इस परीक्षा में सार्वभौमिक रूप में स्नातक होने वाले सभी वकील भाग लेंगे. दूसरी चिंता कानूनी शिक्षा की भूमिका को लेकर है. यह माना जाता है कि विधि विद्यालय सही तौर पर उदार शिक्षा के केंद्र हैं. इनका उद्देश्य छात्रों को मात्र बार परीक्षा के लिए तैयार करने से कहीं अधिक है. यह चिंता सही भावना को तो व्यक्त करती है लेकिन प्रस्तावित मानदंड के स्वरूप के अनुरूप नहीं है. परीक्षा से तो केवल विधि विद्यालयों के लिए न्यूनतम अपेक्षाओं का ही निर्धारण किया जाएगा. विधि विद्यालयों को पूरी आज़ादी रहेगी कि वे अपने छात्रों को बार परीक्षा पास करने के लिए आवश्यक शिक्षा के अलावा भी शिक्षा दे. प्रस्तावित मानदंड से उनकी आज़ादी नहीं छिनेगी और

आदर्श स्थिति तो यह है कि सभी संस्थाएँ प्रस्तावित परीक्षा के लिए अपेक्षित योग्यता के अलावा विविध प्रकार की शिक्षा भी दे सकती हैं ताकि उनकी अलग पहचान बनी रहे.

दो बातें और भी हैं,जिन पर काफ़ी ध्यान देने की ज़रूरत है. पहली बात का संबंध परीक्षा के स्तर से है. इसलिए प्रतियोगिताओं से संबंधित अनेक प्रकार के तनाव हटाना ज़रूरी है. एक ओर निम्न स्तर के कारण परीक्षा पूरी तरह से प्रतीकात्मक बनकर रह जाएगी और परीक्षा के मानदंड को निरर्थक बना देगी और दूसरी ओर परीक्षा का उच्च स्तर अधिकांश विधि विद्यालयों में शिक्षा के स्तर के प्रति संवेदनहीनता का प्रदर्शन करेगा. इस परीक्षा से कानूनी सुधार की जो प्रक्रिया शुरू हुई है, उसे प्रभावी होने में कई साल लग जाएँगे और परीक्षा का उच्च स्तर अंतरिम अवधि में विद्यालयों और छात्रों पर अवास्तविक शर्तें थोप सकता है. अंततः आवश्यकता इस बात की है कि परीक्षा में जिस व्यावहारिक और क्रियाविधिपरक कानून का परीक्षण किया जाएगा उस पर ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है और प्रस्तावित बहुविध विकल्प के फ़ॉर्मेट की भी जानकारी दी जानी चाहिए ताकि अपेक्षित परिणाम प्राप्त किए जा सकें. इसलिए संभलकर और दूरदर्शिता के साथ काम लिया जाना चाहिए ताकि परीक्षा का मानक और विशिष्ट फ़ॉर्मेट निर्धारित किया जा सके.

दूसरी बात अपने स्वरूप में अधिक तकनीकी है और उस पर और अधिक चर्चा की ज़रूरत है. बहुत-से लोग यह मानते हैं कि भारतीय विधिज्ञ परिषद को अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अंतर्गत इस प्रकार की परीक्षा का मानदंड निर्धारित करने का कोई कानूनी अधिकार ही नहीं है. यह मामला उच्चतम न्यायालय के *वी. सुधीर बनाम भारतीय विधिज्ञ परिषद* [(1999)3 एससीसी 176] के निर्णय के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय को विनिर्देशित किया है,जिसमें अधिवक्ता अधिनियम के अंतर्गत वकीलों को नामांकन पूर्व परीक्षा देने से संबंधित परिषद के अधिकार को अधिकारातीत मानकर विखंडित कर दिया गया था. विधिज्ञ परिषद ने वर्तमान मामले को पिछले मामले से भिन्न बताने का प्रयास करते हुए कहा कि वी. सुधीर के मामले में परीक्षा पश्च-नामांकन के मानदंड की थी,जबकि इस मामले में परीक्षा पूर्व-नामांकन के मानदंड की है. 30 अप्रैल, 2010 को पारित संकल्प में अधिवक्ता अधिनियम के खंड 49(1)(एएच) का हवाला देते हुए स्पष्ट किया गया कि इसके अंतर्गत परिषद को प्रेक्टिस करने के लिए शर्तें निर्धारित करने के प्रयोजन से आवश्यक नियम बनाने का अधिकार है. इसमें संदेह नहीं कि यह सच है कि खंड 49(1)(एएच) में पश्च-नामांकन की शर्तों को विनियमित किया गया है कि प्रेक्टिस करने के अधिकार को विनियमित करने से संबंधित इस उपबंध से अधिवक्ता अधिनियम की उस केंद्रीय योजना पर ही कुठाराघात होता है जिसमें एक ऐसे दृश्य की परिकल्पना की गई है जिसमें किसी व्यक्ति का नामांकन तो हो जाता है, लेकिन उसे प्रेक्टिस करने का अधिकार नहीं होता.

आशा की जा सकती है कि जैसे-जैसे परीक्षा नज़दीक आ रही है और इस मानदंड को चुनौती देने वाले इस मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय में होती है, तो खंड 49(1)(एएच) की परिधि पर इस समय छाए संदिग्धार्थकता के बादल छँट जाएँगे. इसमें संदेह नहीं है कि प्रस्तावित मानदंड ही भारत के विधि विद्यालयों और न्यायालय कक्षों में परिवर्तन लाने का एकमात्र साधन नहीं हो सकता. लेकिन यथास्थिति को देखते हुए यदि यह परीक्षा सही रूप में आयोजित की जाती है तो यह सुधार प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगी. कम से कम यह तो लगता है कि प्रस्तावित मानदंड सही सवाल उठाने का एक उपक्रम तो है ही.

माधव खोसला नई दिल्ली स्थित नीति अनुसंधान केंद्र में रिसर्च एसोसिएट हैं

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<*malhotravk@hotmail.com*>